ऐसा कहा कि शरीर और आत्मा तो एक है क्योंकि आप स्तुति तो भगवान की और आचार्य की करते हो, वह सब पुण्य का फल और शरीर की स्तुति करते हो; इसलिए मैं तो ऐसा मानता हूँ कि शरीर और आत्मा एक है। जरा सूक्ष्म बात आयेगी। यहाँ अप्रतिबुद्ध ने ऐसा कहा.... एकान्त व्यवहार ही होता है और निश्चय का पता नहीं, वह अकेले व्यवहार को मानता है, वह मिथ्या है, वह झूठ है — ऐसा कहना है।

आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसा नहीं है; तू नयविभाग को नहीं जानता।.... व्यवहारनय को रखा अवश्य है, वह है अवश्य परन्तु उससे भिन्न निश्चयनय को वह नहीं जानता। आहाहा! **जो नयविभाग इस प्रकार है,....** २७ (गाथा)।

ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो।।२७।।

जीव देह दोनों एक हैं, यह वचन है व्यवहार का।
निश्चयविषैं तो जीव देह, कदापि एक पदार्थ ना॥२७॥

जरा सूक्ष्म रीति से बात की है। **टीका : जैसे इस लोक में सोने और चाँदी को गलाकर....** सोना और रूपा-चाँदी, **एक कर देने से एक पिण्ड का व्यवहार होता है,....** एक पिण्ड का व्यवहार होता है। **उसी प्रकार आत्मा और शरीर की परस्पर एक क्षेत्र में रहने की....** जगह है।

श्रोता : आकाश का क्षेत्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्हें इसमें तो जरा ऐसा कहना है कि यह विकल्प से स्तुति है, वह विकल्प स्वयं व्यवहारस्तुति है और विकल्प, पर की स्तुति करता है, पर के प्रति ऐसा लक्ष्य जाता है न उसका, इसलिए वास्तव में तो वह विकल्प की स्तुति है, वह शरीर की स्तुति है — ऐसा कह दिया है। विकल्प से स्तुति है, वह विकल्प वास्तव में निश्चयनय से पुद्गल है और उससे शरीर की स्तुति की, क्योंकि उसका लक्ष्य वहाँ पर के ऊपर है, वह वास्तविक स्तुति नहीं है परन्तु यह वस्तुस्थिति है ही नहीं — ऐसा नहीं है। आहाहा! कहेंगे धीरे से, हों! बड़ा व्यवहार का-नय का झगड़ा है न?

आत्मा और शरीर की परस्पर एक क्षेत्र में रहने की अवस्था होने से.... आहाहा! **एकपने का व्यवहार होता है।....** आहाहा! **यों व्यवहारमात्र से ही आत्मा और शरीर का एकपना है, परन्तु निश्चय से एकपना नहीं है;....** आहाहा! **क्योंकि निश्चय से विचार किया जाये तो जैसे पीलापन आदि और सफेदी आदि....** पीलापन, सोने का गुण है और सफेदपन, चाँदी का (गुण है) **ऐसे सोने और चाँदी में अत्यन्त भिन्नता होने से....** भले एक पिण्डरूप से कहा सोना और चाँदी इकट्ठा है, इसलिए यह सोना सफेद है — ऐसा कहा परन्तु सफेद तो चाँदी है, सोना तो पीला है। आहाहा! क्या शैली रखी! **उनमें एक पदार्थपने की असिद्धि है, इसलिए अनेकत्व ही है,....** सोना, सोना है और चाँदी, चाँदी है। भले ही एक पिण्डरूप से कहे गये हों। **इसी प्रकार....** आहाहा! **उपयोग और अनुपयोग जिनका स्वभाव है....** आहाहा! जानना-देखना — ऐसा उपयोग जिसका-आत्मा का स्वभाव है। आहाहा! और व्यवहारस्तुति

रागादि-शरीरादि, वह अनुपयोग जिसका स्वभाव है। आहाहा! **ऐसे आत्मा और शरीर में अत्यन्त भिन्नता होने से....** ऐसा आत्मा को और राग को अत्यन्त भिन्नपना होने से... समझ में आया? **(उनमें एक पदार्थपने की असिद्धि है....)** एक पदार्थपने की प्राप्ति नहीं है। राग और आत्मा एकरूप नहीं है; वैसे ही शरीर और आत्मा एकरूप नहीं है। आहाहा! **इसलिए अनेकत्व ही है। ऐसा यह प्रगट नयविभाग है।....** आहाहा!

व्यवहारनय तो आत्मा को और शरीर को एक कहता है। आगे कहेंगे — व्यवहारनय से भी यह फल है — ऐसा कहेंगे। इसका अर्थ? यह व्यवहार झूठा कहा, इस कारण भगवान की स्तुति और यह हो ही नहीं सकती — ऐसा नहीं है। यह परमार्थवस्तु नहीं है, इसलिए उसे असत्यार्थ कहा है। जैसे ११वीं गाथा में पर्याय को असत्यार्थ कहा, वह तो त्रिकाली की अपेक्षा से असत्यार्थ कहा है, परन्तु पर्याय की अपेक्षा से पर्याय है। इसी प्रकार विकल्प से भगवान की स्तुति... क्योंकि विकल्प है, वह पर में लक्ष्य जाता है इसका — शरीर और.... यह। यह विकल्प से स्तुति है। यह परमार्थस्तुति नहीं है परन्तु (जिसे) परमार्थस्तुति है, उसे विकल्प-भाव आता है; इस कारण व्यवहार स्तुति होती है। आहाहा! ऐसी बातें हैं! समझ में आया?

जयसेनाचार्यदेव की टीका में तो साध्य-साधक लिया है। व्यवहार साधन है — (ऐसा) निमित्त से कहा है न विकल्प। (व्यवहार) है — ऐसा सिद्ध करते हैं इतना। ऐसा करके एक आर्यिका ऐसी है कि देखो! भगवान की मूर्ति और प्रतिमा की स्तुति, यह सब झूठा है; इसलिए हम स्थानकवासी मानते हैं, वह सच्चा है - ऐसा कहते हैं। किस अपेक्षा से कहा है? यह तो अकेली विकल्प से स्तुति करते हैं और पर की ओर का उसका लक्ष्य है, इस अपेक्षा से झूठ है परन्तु निर्विकल्प दृष्टि हुई, राग से भिन्न आत्मा की स्तुति हुई, उसे जो विकल्प आता है, वह विकल्प व्यवहारस्तुति है। है भले वह राग की ओर पुद्गल की है; वह विकल्प है, वह स्वयं ही पुद्गल है और राग! आहाहा! ऐसा अटपटा लगता है। व्यवहारस्तुति नहीं है — ऐसा नहीं परन्तु व्यवहारस्तुति, वह परमार्थस्तुति नहीं है - ऐसा है। आहाहा!

परमार्थस्तुति तो भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, उस ओर की एकाग्रता

के आश्रय में उसका सत्कार-स्वीकार होना। आहाहा! वह निश्चय, सत्य, अबन्धपरिणामी निश्चयस्तुति है। समझ में आया? आहाहा!

और अकेला व्यवहार है, वह झूठा है — इतना सिद्ध करना है परन्तु निश्चयस्तुतिवाले को ऐसा व्यवहार-विकल्प आता है और भगवान का गुण (गान) होता है, वह भगवान का गुण गाता है, वह तो वास्तव में पर का और शरीर का है, आत्मा का नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इसलिए यहाँ कहा, यही बात आगे की गाथा में कहते हैं। देखो, २८ गाथा! ऐसी विशिष्टता से रखा है कि व्यवहार झूठा है — ऐसा कहा फिर भी उनकी स्तुति करने से अथवा उनकी-भगवान की प्रतिमा या मूर्ति देखने से शान्तभाव, अर्थात् शुभभाव होता है और उसे देखने से शान्ति ऐसी है — ऐसा ज्ञान में लक्ष्य आता है। है तो शुभभाव, परन्तु वह शुभभाव अत्यन्त है ही नहीं और न ही हो — ऐसा नहीं है। समझ में आया? वह शुभभाव होता है। निश्चय के अनुभव की अपेक्षा रखकर (होता है) क्योंकि श्रुतज्ञान होने पर आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन होने पर जो भावश्रुतज्ञान हुआ, उसके दो भेद — निश्चय (नय) और व्यवहारनय पड़ जाते हैं; इसलिए ज्ञानी को भी व्यवहारनय होता है परन्तु अकेला व्यवहारनय वह हितकर है — ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानी को वह व्यवहारनय आता है, उसमें शुभभाव होता है और उससे राग द्वारा भगवान के, परद्रव्य के; आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य, वह अद्रव्य हो गया, अर्थात् यह आत्मा नहीं, अर्थात् शरीर हो गया। क्या कहा समझे?

इस आत्मा के अतिरिक्त विकल्प उठा, वह भी एक न्याय से शरीर है और जिसकी स्तुति की जाती है, वह भी यह आत्मा नहीं है; इसलिए वह शरीर ही है। व्यवहारस्तुति है न? आहाहा! चाहे तो भले भगवान के, सर्वज्ञ के विकल्प से उसका वह करे तो भी वह तो राग है और वह राग है, वह कहीं स्वभाव की स्तुति नहीं है। इसके आत्मा का जो स्वभाव है, उसकी स्तुति नहीं है। आहाहा! यह व्यवहार बिल्कुल झूठा है, ऐसा कहना है — ऐसा वहाँ नहीं है। व्यवहार है अवश्य परन्तु व्यवहार, निश्चय का कारण है — ऐसा नहीं है, तथापि निमित्त कथन से ऐसा कहा जाता है। निमित्त को साधनरूप से, उपचार से,

व्यवहार से, अभूतार्थनय से कहा जाता है। अरे! इतने सब... समझ में आया?

इस स्तुति में बड़ी गड़बड़ है, वह आर्यिका कहती है देखो! समयसार कहता है कि मूर्ति और मूर्ति की पूजा तथा स्तुति झूठी है। आहाहा! और आत्मसिद्धि में कहीं मूर्ति आयी नहीं है कहीं, श्रीमद् में है न, ख्याल है परन्तु इससे भगवान की प्रतिमा और उसकी स्तुति का विकल्प ज्ञानी को हो ही नहीं — ऐसा नहीं है।

श्रोता : विकल्प आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ जाता है। आहाहा! निश्चयस्तुति तो अपने स्वरूप में एकाग्रता, वह निश्चय; उसे श्रुतज्ञान का व्यवहारनय आवे, वह व्यवहारनय अर्थात् विकल्प... व्यवहारनय का विषय विकल्प और फिर उसका विषय पर, आहाहा! उसे यहाँ शरीर की स्तुति, वह आत्मा की स्तुति नहीं है। विकल्प से स्तुति, वह आत्मा की स्तुति नहीं है — इतनी बात है। तथापि जो निर्विकल्प स्तुति है, उसे पूर्ण वीतराग नहीं, तब उसे विकल्प की स्तुति आये बिना रहती ही नहीं। होती है, साधक है न? इसलिए ऐसा का ऐसा निषेध नहीं कर डाले (कि) व्यवहारस्तुति का विकल्प है, वह हो ही नहीं तो वह झूठा है। इसी प्रकार वह व्यवहारस्तुति है, वह मोक्ष का कारण है — ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा बहुत अन्तर... बहुत कठिन काम। इसमें पकड़ा गये हो न, उसमें फिर अपनी दृष्टि से इसका अर्थ करना — ऐसा नहीं होता, भाई! आहाहा!

गाथा २८

तथा हि–

इणमण्णं जीवादो देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं।।२८।।

इदमन्यत् जीवाद्देहं पुद्गलमयं स्तुत्वा मुनिः।
मन्यते खलु संस्तुतो वन्दितो मया केवली भगवान्।।

यथा कलधौतगुणस्य पाण्डुरत्वस्य व्यपदेशेन परमार्थतोऽतत्स्वभावस्यापि कार्तस्वरस्य व्यवहारमात्रेणैव पाण्डुरं कार्तस्वरमित्यस्ति व्यपदेशः, तथा शरीरगुणस्य शुक्ललोहितत्वादेः स्तवनेन परमार्थतोऽतत्स्वभावस्यापि तीर्थकरकेवलिपुरुषस्य व्यवहारमात्रेणैव शुक्ललोहितस्तीर्थकरकेवलि–पुरुष इत्यस्ति स्तवनम्। निश्चयनयेन तु शरीरस्तवनेनात्मस्तवनमनुपपन्नमेव।

यही बात इस गाथा में कहते हैं —

जीव से जुदा पुद्गलमयी, इस देह की स्तवना करी।
माने मुनी जो केवली, बंदन हुआ स्तवना हुई॥२८॥

गाथार्थ : [जीवात् अन्यत्] जीव से भिन्न [इदम् पुद्गलमयं देहं] इस पुद्गलमय देह की [स्तुत्वा] स्तुति करके [मुनिः] साधु [मन्यते खलु] ऐसा मानते हैं कि [माया] मैंने [केवली भगवान्] केवली भगवान की [स्तुतः] स्तुति की और [वंदितः] वन्दना की।

टीका : जैसे, परमार्थ से सफेदी, सोने का स्वभाव नहीं है, फिर भी चाँदी का

जो श्वेतगुण है, उसके नाम से सोने का नाम 'श्वेत स्वर्ण' कहा जाता है, यह व्यवहारमात्र से ही कहा जाता है; इसी प्रकार, परमार्थ से शुक्ल-रक्तता तीर्थंकर-केवलीपुरुष का स्वभाव न होने पर भी, शरीर के गुण जो शुक्ल-रक्तता इत्यादि हैं, उसके स्तवन से तीर्थंकर-केवली पुरुष का 'शुक्ल-रक्त तीर्थंकर केवलीपुरुष' के रूप में स्तवन किया जाता है, वह व्यवहारमात्र से ही किया जाता है, किन्तु निश्चयनय से शरीर का स्तवन करने से आत्मा का स्तवन नहीं हो सकता।

भावार्थ : यहाँ कोई प्रश्न करे कि — व्यवहारनय तो असत्यार्थ कहा है और शरीर जड़ है, तब व्यवहाराश्रित जड़ की स्तुति का क्या फल है ? उसका उत्तर यह है — व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ नहीं है, उसे निश्चय को प्रधान करके असत्यार्थ कहा है और छद्मस्थ को अपना, पर का आत्मा साक्षात् दिखायी नहीं देता, शरीर दिखायी देता है, उसकी शान्तरूप मुद्रा को देखकर अपने को भी शान्तभाव होते हैं। ऐसा उपकारसमझकर शरीर के आश्रय से भी स्तुति करता है तथा शान्तमुद्रा को देखकर अन्तरंग में वीतरागभाव का निश्चय होता है, यह भी उपकार है।

गाथा - २८ पर प्रवचन

यहाँ तो यह कहते हैं देखो ! २८ गाथा

इणमण्णं जीवादो देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं।।२८।।

जीव से जुदा पुद्गलमयी, इस देह की स्तवना करी।
माने मुनी जो केवली, बंदन हुआ स्तवना हुई ॥२८॥

टीका : जैसे, परमार्थ से सफेदी सोने का स्वभाव नहीं है, फिर भी चाँदी का जो श्वेत गुण है, उसके नाम से सोने का नाम 'श्वेत स्वर्ण'.... सफेद सोना - ऐसा कहते हैं न ? सफेद सोना — ऐसा नाम **कहा जाता है, यह व्यवहारमात्र से ही कहा जाता है; इसी प्रकार, परमार्थ से शुक्ल-रक्तता तीर्थंकर-केवलीपुरुष का स्वभाव न होने पर भी,....** स्वर्णवर्णी भगवान — ऐसा आता है न ? सोलह तीर्थंकर

स्वर्णवर्णी.... **शरीर के गुण जो शुक्ल-रक्तता इत्यादि हैं, उसके स्तवन से तीर्थंकर-केवली पुरुष का 'शुक्ल-रक्त तीर्थंकर केवलीपुरुष' के रूप में स्तवन किया जाता है, वह व्यवहारमात्र से ही किया जाता है....** देखा ? व्यवहार सिद्ध किया।

भगवान परमात्मा परवस्तु है, उनकी स्तुति है, वह विकल्प है; वास्तव में तो वह पुद्गल है और वह स्वयं पुद्गल, अर्थात् इस आत्मा के अतिरिक्त पर की स्तुति का विकल्प ज्ञानी को भी आता है परन्तु वह मोक्ष का वास्तविक कारण नहीं है। आहाहा! इतना (सिद्ध करना है)। आहाहा! आगे-पीछे करके मार्ग बदल डाला।

श्रोता : सम्यग्दर्शन को निश्चयस्तुति कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्तुति है परन्तु फिर भी वह स्तुति होने पर भी, ऐसा विकल्प का-व्यवहारस्तुति का भाव आता है, तथापि वह सच्ची स्तुति नहीं है, फिर भी वह व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं है — ऐसा बहुत अटपटा काम! आहाहा!

वास्तव में तो जो विकल्प उत्पन्न होता है, वही वास्तव में तो पर शरीर है और उसकी स्तुति जो — पर की ऐसे करते हैं, इस आत्मा को सिवाय पर की, पर है वह अनात्मा है, इस अनुसार तो — इस द्रव्य की अपेक्षा से तो भगवान के द्रव्य को भी अद्रव्य कहा गया है। आहाहा! ऐसा है भाई! इसी प्रकार भगवान आत्मा की अपेक्षा से, भगवान का आत्मा भी इस अपेक्षा से अनात्मा कहा जाता है। उनकी अपेक्षा से आत्मा है। आहाहा! ऐसे अनात्मा की, अर्थात् शरीर की... आहाहा! वह स्तुति व्यवहार से की जाती है परन्तु निश्चय से उनका स्तवन करने से आत्मा का स्तवन नहीं होता, आहाहा! परन्तु विकल्प से-पर के स्तवन से स्व का निश्चय स्तवन नहीं होता। समझ में आया ? आहाहा!

आहाहा! आहाहा! यह कलश में आता है न भाई! पहले आत्मा और अनात्मा... शुरुआत में आता है, कलश में आता है। इस आत्मा के अतिरिक्त दूसरे सब अनात्मा कहे जाते हैं। इस अपेक्षा से, हों! यह द्रव्य है, वह स्वद्रव्य है और स्वद्रव्य की अपेक्षा से भगवान का द्रव्य, अद्रव्य कहा जाता है। आहाहा! उनकी अपेक्षा से उनका द्रव्य; इसकी अपेक्षा से अद्रव्य। आहाहा! उनकी अपेक्षा से उनका आत्मा, आत्मा परन्तु इसकी अपेक्षा से उनका आत्मा, अनात्मा। अरे! ऐसी सब कठिन बातें, ओहोहो! इसलिए कोई व्यवहारस्तुति

है, उसे झूठा कहा; इसलिए होती ही नहीं — ऐसा नहीं है। झूठी का अर्थ ? — वह बन्ध का कारण है। व्यवहारनय का विषय राग और स्तुति है, वह सब बन्ध का कारण है, इस अपेक्षा से उसे झूठा कहा है परन्तु वह वस्तु है ही नहीं (- ऐसा नहीं है।) आहाहा! ऐसा शुभभाव होता है परन्तु उससे भगवान की स्तुति-तीर्थंकर की स्तुति....

देखो! (शरीर का स्तवन करने से) आत्मा का स्तवन नहीं होता, इतनी बात है। विकल्प द्वारा अपने आत्मा के अनन्त गुण के पिण्ड की स्तुति के अतिरिक्त जितनी पर की स्तुति है, वह वास्तविक-यथार्थ स्तुति नहीं है। समझ में आया ? इस कारण अयथार्थ स्तुति होने से उस स्तुति का भाव और परसन्मुख का जो स्तुति का लक्ष्य, वह वस्तु ही नहीं — ऐसा नहीं है। अरे! इतने सब.... (पहलू समझना)!

इसलिए कहते हैं देखो! **भावार्थ : यहाँ कोई प्रश्न करे कि — व्यवहारनय तो असत्यार्थ कहा है....** है ? **शरीर जड़ है, तब व्यवहाराश्रित जड़ की स्तुति का क्या फल है ?....** आहाहा! **उसका उत्तर यह है — व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ नहीं है,....** वह है ही नहीं — ऐसा नहीं है। आहाहा! **निश्चय को प्रधान करके असत्यार्थ कहा है....** देखा ? अन्दर भगवान आत्मा के आनन्द की एकाग्रता की स्तुति, उस निश्चय की प्रधानता की अपेक्षा से विकल्प की स्तुति को झूठा कहा है। आहाहा! **और छद्मस्थ को....** अब देखो! वह विकल्प है न, इसलिए विकल्प में कहीं भगवान का आत्मा ज्ञात नहीं होता। **छद्मस्थ को अपना, पर का आत्मा साक्षात् दिखायी नहीं देता,....** है ? व्यवहार से शरीर दिखायी देता है। आहाहा! अपना ही अपना विकल्प दिखायी देता है व्यवहार से, और सामनेवाले का भी उसके बाह्य शरीर को वह देखता है, अथवा भले उसके गुण हों परन्तु इन गुण की अपेक्षा से वह अनात्मा है। आहाहा! यहाँ फिर कहेंगे कि भाई! यह भगवान की स्तुति नहीं है तो निश्चयस्तुति किसे कहना ? तब भगवान की निश्चयस्तुति — ऐसा नहीं लिया। यह आत्मा अन्दर में अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, इसके सन्मुख होकर एकाग्र होना, वह निश्चय केवली की स्तुति है। अब स्तुति यहाँ कहना उसकी और निश्चयस्तुति, आहाहा! अरे! यह मार्ग तो प्रभु! स्याद्वाद से किस अपेक्षा से कहा है, यह न समझकर खींचतान करे और व्यवहारस्तुति से कल्याण हो

जायेगा — ऐसा माने वह मिथ्या है और व्यवहारस्तुति आती ही नहीं — समकिती को ज्ञानी को भी (व्यवहारस्तुति आती ही नहीं) — यह भी मिथ्या है। है? वह यहाँ कहते हैं, देखो! **उसकी शान्तरूप मुद्रा को देखकर....** देखो! है तो पर, परन्तु शुभभाव आया है; इसलिए भगवान की मूर्ति, प्रतिमा या भगवान साक्षात् हों, आहाहा! **शान्तरूप मुद्रा को देखकर अपने को भी शान्तभाव होते हैं।....** शुभभाव! समझ में आया? मुद्रा देखकर - यह निमित्त से कथन है, परन्तु अपने को ऐसा शुभभाव होता है, तब ऐसे देखने पर शान्त है — ऐसा इसे लगता है। इसकी ज्ञान की पर्याय में (ऐसा लगता है)। आहाहा! क्या शैली!

ऐसा उपकार समझकर.... देखा? **शरीर के आश्रय से भी स्तुति करता है....** अर्थात् विकल्प का भाव आता है। आहाहा! और निर्विकल्प प्रभु आत्मा की स्तुति के अतिरिक्त ऐसा विकल्प का भाव होता है। आहाहा! बहुत फेरफार... मध्यस्थता से बात न समझे और खींचतान करते हैं... यहाँ तो कहा है, फिर स्पष्टीकरण किया है कि उससे शान्तभाव होता है, अर्थात् शुभभाव होता तो स्वयं से है परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ जाता है। आहाहा! व्यवहार का लक्ष्य ही पर के प्रति जाता है और निश्चय का लक्ष्य स्व के प्रति है। आहाहा! परन्तु वह व्यवहारनय का विषय-स्तुति, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। समझ में आया? तथापि बन्ध का-विकल्प का मार्ग बीच में आये बिना नहीं रहता, वह भी ज्ञानी को; अज्ञानी को तो निश्चय नहीं तो व्यवहार भी नहीं। आहाहा! ऐसा सब बहुत कहाँ फेरफार...?

देखा? **शान्तमुद्रा को देखकर अन्तरंग में वीतरागभाव का निश्चय होता है...** देखा? लक्ष्य है न, पर के ऊपर कि... आहाहा! शान्त प्रतिमा मुद्रा! वीतरागमुद्रा देखकर केवलज्ञान याद आता है। आता है न? समयसार नाटक में आता है, चौदह गुणस्थान के अधिकार में (आता है कि) मुद्रा देखकर... आहाहा! है तो शुभभाव परन्तु उसके लक्ष्य में, आहाहा! इसलिए ऐसा भाव आता है। इसलिए व्यवहारस्तुति को भी अवकाश है, इतनी बात है। परन्तु वह व्यवहारस्तुति है, इसलिए निश्चयस्तुति का कारण है — ऐसा नहीं है। अरे...! बहुत कठिन, फेरफार... व्यवहारनय है ही नहीं — ऐसा

उत्थापित करे, वह झूठा है तथा व्यवहार से निश्चय का लाभ होता है — ऐसा मानता है, वह भी झूठा है। अब, ऐसी बात कहाँ!

वीतराग भाव का निश्चय होता है... देखा? स्वयं मानो कि, आहाहा! ऐसे वीतराग... ऐसे वीतराग... वह किसे? कि जिसे निश्चयस्तुति का स्वभाव प्रगट हुआ है, उसे शुभभाव में ऐसा ज्ञात होता है। आहाहा! देखो! भावार्थ कर्ता ने ऐसा स्पष्टीकरण किया है। व्यवहारस्तुति को स्थापित किया है, (वह) है, परन्तु वह बन्ध का कारण है; इस कारण उसे निश्चयस्तुति नहीं कहा जाता है परन्तु निश्चयस्तुति नहीं कहा जाता है; इसलिए व्यवहारस्तुति का भाव ही नहीं होता - ऐसा नहीं है। अरे! ऐसी बातें! क्षण में हाँ और क्षण में ना! क्या अपेक्षा है यह जानना चाहिए न? आहाहा! इस आत्मा की अपेक्षा से दूसरे सभी आत्मायें भी अनात्मा और अद्रव्य हैं। आहाहा! इसलिए वास्तव में तो वे इस जीव की अपेक्षा से अजीव हैं, जीव नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। इसलिए अजीव की स्तुति है। वह शुभविकल्प है, वह अजीव है और सामनेवाले की स्तुति है, वह भी यह जीव नहीं, इसलिए अजीव है। इसलिए (व्यवहार) स्तुति (को) झूठी कहा है परन्तु वह भाव आये बिना नहीं रहता है। भावश्रुतज्ञान है न? तो दो नय के भेद उसके पड़ते हैं, उसे निश्चय और व्यवहार, समकिती को ही व्यवहारनय होता है, अज्ञानी को व्यवहारनय नहीं होता। नय ही नहीं है जहाँ (भाव) श्रुतज्ञान नहीं वहाँ नय कैसा? आहाहा! अब ऐसे विवाद में... यहाँ तो शान्तमुद्रा देखकर... है तो पर, वास्तव में तो इस जीव की अपेक्षा से वे सब अजीव हैं। वास्तव में तो वे शरीर हैं। आहाहा! क्योंकि विकल्प उत्पन्न हुआ, वह स्वयं ही शरीर-पुद्गल है। आहाहा! यह गाथा बहुत अटपटी है।

गाथा २९

तथा हि –

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि।।२९।।

तन्निश्चये न युज्यते न शरीरगुणा हि भवन्ति केवलिनः।
केवलिगुणान् स्तौति यः स तत्त्वं केवलिनं स्तौति।।

यथा कार्तस्वरस्य कलधौतगुणस्य पाण्डुरत्वस्याभावान्न निश्चयतस्तद्व्यपदेशेन व्यपदेशः, कार्तस्वरगुणस्य व्यपदेशेनैव कार्तस्वरस्य व्यपदेशात्; तथा तीर्थकरकेवलि–पुरुषस्य शरीरगुणस्य शुक्ललोहितत्वादेरभावान्न निश्चयतस्तत्स्तवनेन स्तवनं, तीर्थकरकेवलिपुरुषगुणस्य स्तवनेनैव तीर्थकरकेवलिपुरुषस्य स्तवनात्।

ऊपर की बात को गाथा में कहते हैं —

निश्चयविषैं नहिं योग्य ये, नहिं देह गुण केवलि हि के।
जो केवली गुण को स्तवे, परमार्थ केवलि वो स्तवे॥२९॥

गाथार्थ : [तत्] वह स्तवन [निश्चये] निश्चय में [न युज्यते] योग्य नहीं है [हि] क्योंकि [शरीरगुणाः] शरीर के गुण [केवलिनः] केवली के [न भवंति] नहीं होते; [यः] जो [केवलिगुणान्] केवली के गुणों की [स्तौति] स्तुति करता है, [सः] वह [तत्त्वं] परमार्थ से [केवलिनं] केवली की [स्तौति] स्तुति करता है।

टीका : जैसे चाँदी का गुण जो सफेदपना, उसका सुवर्ण में अभाव है; इसलिए निश्चय से सफेदी के नाम से सोने का नाम नहीं बनता, सुवर्ण के गुण जो पीलापन

आदि हैं, उनके नाम से ही सुवर्ण का नाम होता है; इसी प्रकार शरीर के गुण जो शुक्ल-रक्तता इत्यादि हैं, उनका तीर्थंकर-केवलीपुरुष में अभाव है; इसलिए निश्चय से शरीर के शुक्ल रक्तता आदि गुणों का स्तवन करने से तीर्थंकर-केवलीपुरुष का स्तवन नहीं होता है, तीर्थंकर-केवलीपुरुष के गुणों का स्तवन करने से ही तीर्थंकर-केवलीपुरुष का स्तवन होता है।

गाथा - २९ पर प्रवचन

अब, ऊपर की बात को गाथा से सिद्ध करते हैं, अब इसे क्यों व्यवहार कहा और निश्चय क्यों नहीं कहा ? — इसका वर्णन करते हैं।

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि।।२९।।

निश्चयविषैं नहिं योग्य ये, नहिं देह गुण केवलि हि के।
जो केवली गुण को स्तवे, परमार्थ केवलि वो स्तवे॥२९॥

टीका : जैसे चाँदी का गुण जो सफेदपना, उसका सुवर्ण में अभाव है.... देखा ? **इसलिए निश्चय से सफेदी के नाम से सोने का नाम नहीं बनता,....** है ? सफेदपने के नाम से सोने का नाम.... क्योंकि सोने में सफेदपने का अभाव है। आहाहा ! **सुवर्ण के गुण जो पीलापन आदि हैं, उनके नाम से ही सुवर्ण का नाम होता है; इसी प्रकार....** ओहोहो ! किस प्रकार ? **शरीर के गुण जो शुक्ल-रक्तता इत्यादि हैं....** क्योंकि विकल्प जो है, वह परतरफ का है (ऐसा होने से) वह आत्मा को नहीं देखता। आहाहा ! वह तो सामने उसका शरीर और उसके गुण,... भले यहाँ गुण लिये गये, तथापि वह पर को देखता है। आहाहा ! ओहोहो ! क्या शैली ! **शरीर के गुण जो शुक्ल-रक्तता इत्यादि हैं उनका तीर्थंकर-केवलीपुरुष में अभाव है....** आहाहा ! तीर्थंकर और उनका जो आत्मा, उनके आत्मा में इनका अभाव है। आहाहा ! **इसलिए निश्चय से शरीर के शुक्ल-रक्तता आदि गुणों का स्तवन करने से तीर्थंकर-केवलीपुरुष का**

स्तवन नहीं होता है,..... आहाहा! आहाहा! **तीर्थंकर-केवलीपुरुष के गुणों का स्तवन करने से ही....** फिर देखो? **तीर्थंकर-केवलीपुरुष के गुणों का स्तवन करने से....** परन्तु इसका अर्थ? इस आत्मा के गुणों का स्तवन करने से। आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वरूप, पूर्ण आनन्दस्वरूप — यह आत्मा, उसकी निर्विकल्पदृष्टि से स्तवन करने से... आहाहा! यह केवली की स्तुति होती है। समझ में आया?

श्रोता : बहुत स्पष्टता की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाबूभाई! ऐसा सब फेरफार है ऐसा। क्या हो! खींचतान करते हैं। यहाँ तो यह कहते हैं कि तीर्थंकरपुरुष का स्तवन होता है परन्तु वह केवल तीर्थंकर (केवलीपुरुष का) स्तवन पुरुष का होता है — इसका अर्थ? यह आत्मा के गुणों का स्तवन होता है वह। आहाहा! वह आता है न 'ज्ञातारं मोक्षमार्ग नेतारं ज्ञातारं भूप्रतां वन्दे तदगुण लब्ध्ये' इसका अर्थ यह लोग ऐसा करते हैं 'हे प्रभु! आपकी स्तुति से आपके गुण मुझे प्राप्त होओ।' 'तद्गुणलब्ध्ये — ऐसा है न, परन्तु उसका यह अर्थ नहीं है। आहाहा! उनकी स्तुति के काल में मेरी ओर का जो स्वभाव में जोर है, उसका मुझे लाभ प्राप्त होओ, उसका लाभ होओ — ऐसी बात है क्या हो? ऐसी भगवान की स्तुति करने से लाभ होता है? आहाहा! भाई! यह कहा न, अमृतचन्द्राचार्य ने (कहा है न) 'कलमासिता' मेरे परिणाम अभी कलुषित वर्तते हैं पर्याय में! मुनि हूँ, आचार्य हूँ। आहाहा! परन्तु मैं शुद्ध चैतन्यद्रव्य हूँ — ऐसा मुझे भान है फिर भी पर्याय में अनादि की कलमासिता परिणति खड़ी है। इसकी यह टीका करते-करते उसका नाश हो जाओ। अब, टीका करते हुए तो टीका करते हुए तो (टीका) करने का (भाव) तो विकल्प है परन्तु मेरा जोर उस समय अन्दर में है। उसके जोर की वृद्धि हो जाओ। उस काल में, उससे नहीं — ऐसा सब बहुत फेरफार।

श्रोता : उससे अर्थात् उसके निमित्त से, उपादान मेरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसा है। अभी सत्य समझने में भी अपना आग्रह रखते हैं और सत्य को नहीं समझते तो अब इसे वह सत्य अन्दर हाथ कहाँ से आयेगा? आहाहा!

गाथा ३०

कथं शरीरस्तवनेन तदधिष्ठातृत्वादात्मनो निश्चयेन स्तवनं न युज्यत इति चेत्–

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति।।३०।।

नगरे वर्णिते यथा नापि राज्ञो वर्णना कृता भवति।
देहगुणे स्तूयमाने न केवलिगुणाः स्तुता भवन्ति।।

तथा हि–

(आर्या)

प्राकारकवलिताम्बरमुपवनराजीनिगीर्णभूमितलम्।
पिबतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालम्।।२५।।

– इति नगरे वर्णितेऽपि राज्ञः तदधिष्ठातृत्वेऽपि प्रकारोपवनपरिखादिमत्त्वाभावाद्वर्णनं न स्यात्।

अब, शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा तो शरीर का अधिष्ठाता है, इसलिए शरीर के स्तवन से आत्मा का स्तवन निश्चय से क्यों युक्त नहीं है? उसके उत्तररूप दृष्टान्तसहित गाथा कहते हैं —

रे ग्राम वर्णन करने से, भूपाल वर्णन हो न ज्यों।
त्यों देहगुण के स्तवन से, नहिं केवलीगुण स्तवन हो॥३०॥

गाथार्थ : [यथा] जैसे [नगरे] नगर का [वर्णिते अपि] वर्णन करने पर भी

[राज्ञः वर्णना] राजा का वर्णन [न कृता भवति] नहीं किया जाता; इसी प्रकार [देहगुणे स्तूयमाने] शरीर के गुण का स्तवन करने पर [केवलिगुणाः] केवली के गुणों का [स्तुताः न भवन्ति] स्तवन नहीं होता।

टीका : उपरोक्त अर्थ का काव्य कहते हैं।

श्लोकार्थ : [इदं नगरम् हि] यह नगर ऐसा है कि जिसने [प्राकार-कवलित-अम्बरम्] कोट के द्वारा आकाश को ग्रसित कर रखा है (अर्थात् इसका कोट बहुत ऊँचा है), [उपवनराजी-निगीर्ण-भूमितलम्] बगीचों की पंक्तियों से जिसने भूमितल को निगल लिया है, (अर्थात् चारों ओर बगीचों से पृथ्वी ढक गयी है) और [परिखावलयेन पातालम् पिबति इव] कोट के चारों ओर की खाई के घेरे से मानो पाताल को पी रहा है (अर्थात् खाई बहुत गहरी है)।

इस प्रकार नगर का वर्णन करने पर भी, उससे राजा का वर्णन नहीं होता क्योंकि, यद्यपि राजा उसका अधिष्ठाता है तथापि, वह राजा कोट-बाग-खाई आदिवाला नहीं है।

गाथा - ३० पर प्रवचन

अब, शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा तो शरीर का अधिष्ठाता है.... है ? शरीर का स्वामी है, मालिक है। आहाहा! **इसलिए शरीर के स्तवन से आत्मा का स्तवन निश्चय से क्यों युक्त नहीं है ?....** आहाहा! यह वहाँ भी कहा है न ? प्रवचनसार! व्यवहार — निश्चय ये सब जितने विकल्प हैं, उनका अधिष्ठाता आत्मा है। आहाहा! व्यवहार से मोक्ष होता है, क्रिया से होता है — ऐसा आता है न ? क्रिया से होता है, ज्ञान से होता है, व्यवहार से होता है, निश्चय से होता है — ये सभी धर्म एक समय में गिनने में आये हैं और उनका अधिष्ठाता आत्मा है — ऐसा वहाँ कहा है, आहाहा! क्योंकि उसमें होता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि शरीर को और आत्मा को, अधिष्ठाता उसका स्वामी है या नहीं ? यह स्वामी — ऐसा नहीं है, यहाँ जो कहा ऐसा नहीं है। आहाहा! **इसलिए शरीर के**

स्तवन से आत्मा का स्तवन क्यों युक्त नहीं है ? उसके उत्तररूप (दृष्टान्तसहित गाथा कहते हैं —)

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति।।३०।।
रे ग्राम वर्णन करने से, भूपाल वर्णन हो न ज्यों।
त्यों देहगुण के स्तवन से, नहिं केवलीगुण स्तवन हो॥३०॥

आहाहा! **यह नगर ऐसा है कि....** आहाहा! यह विकल्प की स्तुति और सब भगवान का यह सब नगर का वर्णन है, आत्मा का नहीं। आहाहा! **यह नगर ऐसा है कि जिसने कोट के द्वारा आकाश को ग्रसित कर रखा है (अर्थात् इसका कोट बहुत ऊँचा है),....** गढ़ कि पूरे आकाश को ग्रसित कर जाये, इतना ऊँचा गढ़ है — ऐसा। इस नगर का कोट इतना ऊँचा है कि आकाश को ग्रसित कर गया है — ऐसा।

(श्रोताओं को लक्ष्य करके कहा) यहाँ तो अब बहुत जगह है - नीचे। ऊपर बैठते हैं तो यहाँ बहुत जगह है, कोई ऊपर बैठे हैं, नीचे बैठना चाहिए, तो सब ऊपर बैठते हैं, सुनने आवें वे यहाँ ऊँचे बैठे, इसका क्या अर्थ है ? है जगत की इतनी स्वच्छन्दता, कुछ व्यवहार का भी पता नहीं होता। यहाँ (शास्त्र) पढ़ा जा रहा है, उससे ऊँचा बैठना.... वह तो उस दिन लोग नहीं समा रहे थे — एक साथ बैठ नहीं सक रहे थे, सबके साथ इसलिए.... पूरे जगत की रीत ऐसी। आहाहा!

यह क्या कहा ? इस नगर के कोट ने आकाश को ग्रसित किया है, इतना बड़ा - ऊँचा है परन्तु यह तो नगर का वर्णन है। आहाहा!

श्रोता : राजा का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार भगवान के गुणों का या भगवान के शरीर का, यह सब नगर का वर्णन है — पर का है। आहाहा! समझ में आया ? **'उपवनराजी-निगीर्ण-भूमितलम्' बगीचों की पंक्तियों से जिसने भूमितल को निगल लिया है,....** अर्थात् इतने अधिक बगीचे हैं कि मानो बगीचे पूरी भूमि को निगल गये हैं... परन्तु यह वर्णन तो नगर का हुआ; उसके राजा का नहीं हुआ। आहाहा! **(चारों ओर बगीचों से पृथ्वी ढक**

गयी है) और 'परिखावलयेन पातालम् पिबति इव' कोट के चारों ओर की खाई के घेरे से मानो पाताल को पी रहा है.... गढ़ मानों आकाश का हो गया, वर्तमान में बगीचा पृथ्वी को निगल लिया, पाताल में खाई.... आहाहा! आहाहा!

इस प्रकार नगर का वर्णन करने पर भी उससे राजा का वर्णन नहीं होता क्योंकि, यद्यपि राजा उसका अधिष्ठाता है.... निमित्तरूप से। **तथापि, वह राजा कोट-बाग-खाई आदिवाला नहीं है।** आहाहा! आहाहा! इस नगर के वर्णन का निमित्तरूप से राजा अधिष्ठाता कहलाता है, तथापि यह राजा का वर्णन नहीं है।

इसी प्रकार विकल्प से वर्णन हो, आहाहा! वह आत्मा का वर्णन नहीं है; वह तो अनात्मा आदि पुद्गल का — शरीर का वर्णन है। आहाहा! ऐसा है। कोट, बाग, खाई आदिवाला राजा नहीं है। है? आहा! यह विकल्प से स्तुति करे परन्तु इस विकल्पवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! ऐसे विकल्प से इस भगवान की स्तुति करे परन्तु यह आत्मा वहाँ नहीं है। आहाहा! बहुत गम्भीरता! निश्चय और व्यवहार.... अलौकिक गम्भीरता!!

कलश - २६

इसी प्रकार शरीर का स्तवन करने पर, तीर्थंकर का स्तवन नहीं होता, यह भी काव्य द्वारा कहते हैं —

(आर्या)

नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगमपूर्वसहजलावण्यम्।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति॥२६॥

श्लोकार्थ : [जिनेन्द्ररूपं परं जयति] जिनेन्द्र का रूप उत्कृष्टता जयवन्त वर्तता है, [नित्यम्-अविकार-सुस्थित-सर्वांगम्] जिसमें सभी अंग सदा अविकार और सुस्थित हैं, [अपूर्व-सहज-लावण्यम्] जिसमें (जन्म से ही) अपूर्व और स्वाभाविक लावण्य है (जो सर्वप्रिय है) और [समुद्रं इव अक्षोभम्] जो समुद्र की भाँति क्षोभरहित है, चलाचल नहीं है।

इस प्रकार शरीर का स्तवन करने पर भी उससे तीर्थंकर-केवलीपुरुष का स्तवन नहीं होता क्योंकि यद्यपि तीर्थंकर-केवलीपुरुष के शरीर का अधिष्ठातृत्व है तथापि, सुस्थित सर्वांगता, लावण्य आदि आत्मा के गुण नहीं हैं, इसलिए तीर्थंकर-केवलीपुरुष के उन गुणों का अभाव है।

कलश - २६ पर प्रवचन

इसी प्रकार शरीर का स्तवन करने पर तीर्थंकर का स्तवन नहीं होता,.... इसका अर्थ कि विकल्प से चाहे तो परमात्मा तीर्थंकरदेव का स्तवन करो तो भी वह वास्तव में आत्मा का स्तवन नहीं है; वह शरीर का स्तवन है — पुद्गल का है। आहाहा!

भगवान और भगवान की वाणी को इन्द्रिय कहा है न? आयेगा न अब! (गाथा) ३१ में आयेगा। इन्द्रिय कहो या पुद्गल कहो या पर कहो। आहाहा! स्व आत्मा के अनन्त आनन्दकन्द के समक्ष प्रभु! यह भगवान की वाणी और भगवान स्वयं इन्द्रिय है। आहाहा! अर्थात् वह पुद्गल है, अर्थात् वह पर है। आहाहा! वह शरीर है। उसका — नगर का वर्णन, वह आत्मा का वर्णन नहीं है। विकल्प से जो वर्णन होता है - भले भगवान के गुण का (वर्णन हो) परन्तु वह आत्मा का वर्णन नहीं है। आहाहा! गजब शैली! दिगम्बर सन्तों की गजब बात!! गजब बात! ऐसी बात कहीं नहीं है। आहाहा! श्लोक रखा है, २६ वाँ कलश है न? २५ वाँ? २५ वाँ आ गया।

नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगमपूर्वसहजलावण्यम्।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति॥२६॥

श्लोकार्थ : जिनेन्द्र का रूप उत्कृष्टता जयवन्त वर्तता है, आहाहा! **'नित्यम्-अविकार-सुस्थित-सर्वांगम्' जिसमें सभी अंग सदा अविकार और सुस्थित हैं,....** शान्त... शान्त... शान्त... आहाहा! भले प्रकार सुखरूप सुस्थित है परन्तु यह तो पर की - शरीर की बात है। **'अपूर्व-सहज-लावण्यम्' जिसमें (जन्म से ही) अपूर्व और स्वाभाविक लावण्य है (जो सर्वप्रिय है)....** ऐसी लावण्यता है। आहाहा! शरीर की

इतनी सुन्दरता और कोमलता और लावण्यता (है कि) देखनेवाले को प्रिय लगते हैं परन्तु यह सब तो नगर का वर्णन — शरीर का वर्णन हुआ। अरे! उनके गुणों का वर्णन करे तो भी विकल्प है न? परद्रव्य है न? आहाहा! उसमें यह आत्मा का वर्णन नहीं आया। आहाहा! **'समुद्रं इव अक्षोभम्' जो समुद्र की भाँति क्षोभरहित है, चलाचल नहीं है।** शान्त... शान्त... एक लड़के को देखा था, अस्सी की साल में, बोटाद में। कौन जाने कैसा सात-आठ वर्ष का लड़का परन्तु देखो तो ऐसा गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर — ऐसा बैठा हो तो मानो कोई चंचलता नहीं, कुछ नहीं — सामायिक लेकर बैठा तो उसके पिता के साथ आया था। (संवत्) ८० की बात है। बोटाद, परन्तु उसके शरीर की कौन जाने इतनी गम्भीरता कि बालकपना ही नहीं दिखता। यह तो एक साधारण पुण्य, हीन प्राणी, आहाहा! उसके पिता को कहा था कि यह लड़का ऐसी गम्भीर मुद्रा, कभी कुछ हँसना या कुछ विस्मय लगे, कुछ नहीं, कहते हैं। आठ वर्ष का बालक था। ८० की बात है। २० और ३४ — चौबन वर्ष हुए।

यह तो तीन लोक के नाथ, उनके शरीर की लावण्यता का क्या कहना, तथापि वह तो परद्रव्य का गुण है। आहाहा! भगवान के गुण गाना, भगवान के गुण गाना, वह भी शरीर के और पर के हैं; आत्मा के नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन काम भाई! क्योंकि भगवान के गुण गाना, वे गुण कहीं तेरे नहीं हैं। वह तो तेरी अपेक्षा से तो वे सब गुण ही नहीं हैं। आहाहा! इस भाव की अपेक्षा से भगवान का भाव, वह अभाव है। आहाहा! ऐसा है। वीतरागमार्ग बहुत गम्भीर, भाई! आहाहा! अगाध गम्भीर, भाई! आहाहा! उनका निश्चय और उनका व्यवहार, वह कोई बात है! आहाहा! **इस प्रकार शरीर का स्तवन करने पर भी, उससे तीर्थंकर-केवलीपुरुष का स्तवन नहीं होता....** आहाहा! शुभराग से-विकल्प से भगवान के गुणगान गाना, वह भी शरीर का है; आत्मा का नहीं। आहाहा! तेरे आत्मा के नहीं। **यद्यपि तीर्थंकर-केवलीपुरुष के शरीर का अधिष्ठातृत्व है....** निमित्त का (कथन है) **तथापि, सुस्थित सर्वांगता, लावण्य आदि आत्मा के गुण नहीं हैं, इसलिए तीर्थंकर-केवलीपुरुष के उन गुणों का अभाव है।** आहाहा! अर्थात् इस आत्मा में, उनके जो गुण गाओ, उन गुणों का इसमें अभाव है। आहाहा! भगवान के

गुण गाओ, परन्तु उस गुण के भाव का इस आत्मा में तो अभाव है, वे तो पर में रहे। आहाहा! ऐसी निवृत्ति-फुर्सत कहाँ! सत्य को किस प्रकार सत्य खड़ा रहे... आहाहा! ऐसे का ऐसे चला जाये। आहाहा! प्रश्न : अभी तक क्या आया इन सभी गाथाओं में? कि केवली के जो गुण हैं, वे तो इस आत्मा के गुण, वे केवली के गुण हैं, पर के गुण जो हैं, वे केवली के गुण नहीं हैं। वे पर के गुण हैं, वे पर आत्मारूप से गिनकर, इस आत्मा में उनका अभाव है, अर्थात् वास्तव में तो वे अनात्मा के गुण हैं। आहाहा! क्योंकि विकल्प है, वह राग है और उसमें यही आता है। आहाहा! और निर्विकल्परूप से जो आत्मा के गुण, वे केवली के गुण हैं। आहाहा!

आज जरा निश्चय-व्यवहार का विषय था न? आहाहा! इसलिए अब स्पष्टीकरण करेंगे कि भगवान और भगवान की वाणी, वह सब इन्द्रिय है, पुद्गल है, यह आत्मा नहीं। आहाहा! जैसी यह जड़ इन्द्रियाँ हैं, भावेन्द्रियाँ हैं, वैसी ही यह भगवान की वाणी और भगवान स्वयं इन्द्रिय है — केवलीपरमात्मा स्वयं इन्द्रिय है परन्तु इस आत्मा के हिसाब से इन्द्रिय है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय प्रभु... आहाहा! इसकी अपेक्षा से तो भगवान साक्षात् (प्रत्यक्ष) विराजते हैं, वे भी इन्द्रिय है। आहाहा! ऐसे साक्षात् भगवान के गुण (गान) करे तो भी वह पुद्गल के गुण हैं। देखो! विकल्प उठा है और पर की ओर आश्रय है न? आहाहा! निर्विकल्परूप से अन्तर में दृष्टि में जाये, वह केवली का स्तवन है। केवली अर्थात् केवल तू स्वयं... आहाहा! ऐसा स्वरूप है। आज अटपटा था, बाबूभाई! आहाहा! इसमें कुछ फेरफार करने जाये तो होवे — ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि न्याय से वर्णन करके भगवान का गुणगान करे तो भी कहते हैं कि शरीर के गुणगान हैं, तेरे नहीं। यह नगर जो बाह्य की चीज है, उसका वर्णन नगर का वर्णन है। है?

विशेष लेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)